(1)

शोध सारांश

मेवाड़ अपनी प्राचीन समृद्ध परम्परा, अद्भुत शौर्य एवं अनूठे कलात्मक अवदानों के कारण संसार के परिदृश्य में देदीप्यमान है। मेवाड़ में पाषाण काल से लेकर समय-समय पर विकसित हुई सभ्यताओं के मिलने वाले साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ अनेक संस्कृतियों का उत्थान एवं पतन होता रहा है।
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय ‘मेवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि’’ है। राजस्थान की रियासतों में मेवाड़ सिरमौर रहा है, विश्व के प्राचीन राजवंशों में यहाँ के राजकुल को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। मेवाड़ ने स्वाधीनता एवं भारतीय संस्कृति की अभिरक्षार्थ जो अनुपम त्याग एवं अपूर्व शौर्य का परिचय दिया, वह विश्व-प्रसिद्ध है। ताम्रपाषाण कालीन कृषि और पशुपालन-संस्कृति तो मेवाड़ के जीवन का आधार रही है। मेवाड़ का इतिहास भारतीय संस्कृति तथा उसके विविध पक्षों की विकासात्मक गतिविधियों के संचालित करने की दृष्टि से भी अत्यधिक समृद्ध रहा है। मेवाड़ के इतिहास के राजनीतिक घटना चक्र के समानान्तर ही इस प्रदेश में संचालित होती रहने वाली सांस्कृतिक एवं कलात्मक गतिविधियों से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य रूप में मानव सभ्यता और विशिष्ट रूप में भारतीय संस्कृति के विकास एवं संरक्षण की मानवीय चेष्टाएँ इस भू-भाग में प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गयी थीं, जिसका प्रवाह वर्तमान समय तक चला आ रहा है।
सामंत स्वतंत्रता को स्पष्ट करने वाले प्रतीकों में उसके निवास स्थान में बने हुए शीश महल, बाड़ी महल,

(2)

निजी मंदिर, दरीशाला, दरबार भवन वैसे ही बने होते थे जैसे कि राणा के महलों मंे बने शीश महल दरीखाने। सामंत भी अपने सरदारों के साथ दरबार लगाता और नजराने लेता था। जागीर के सरदार की भी तीन श्रेणेयिों में भाई-बांट सरकार मयादी सरकर तथ वंशनुगत सरदार होते थे। सामंत इन्हें मान-सम्मान तथा पद प्रतिष्ठा प्रदान करता था। वह अपने स्वामी सामंत के प्रति स्वामी धर्म एवं सामुदायिक कर्त्तव्य का पालन करने को तत्पर रहते थे। सामंतशाही विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राज्य की सामंत व्यवस्था राणा और उसके लोगों के मध्य सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सम्बन्ध पर आधारित राज्य व्यवस्था को चलाने के लिये पारस्परिक साझेदारी थी। इस साझेदारी में पैतृक अधिकार, देशभक्ति, स्वामी धर्म तथा सामाजिक-आर्थिक कर्त्तव्य निहित रहे थे। यह सामन्तशाही पद्धति समाज के सभी तत्वों पर छाई हुई थी। परिवार के मुखियाओं, जाति पंचायतों, ग्राम पंचायतों, जजमानी-जागीर व्यवस्थाओं आदि में प्रचलित परम्पराएं नियमाचरण तथा इनके प्रति लोकाचार, जाति शुद्धता, वंशानुगत पद स्थितियों एवं संयुक्त परिवार प्रणाली में सामाजिक, राजनीतिक प्रतिदर्शों पर राजपूत जाति की सामंतिक प्रभावों का प्रतिलक्षण यथा स्थान दिखाई देता है। इन्हीं आधारों पर कहा जा सकता है कि मेवाड़ की सामन्तशाही भावना व्याप्त रही थी। राज्य में सामन्तशाही सामाजिक धर्म पर आधारित रही थी।
मेवाड़ में भूमि को स्वामी शासक माना जाता था किन्तु मेवाड़ में शासक भूमि का भाग लेने का अधिकारी रहा था। मूल मंे जमीन जोतने वाला भूमि स्वामी माना जाता था। अतः मेवाड़ की यह व्यवस्था

(3)

आर्थिक नियंत्रण के स्थान पर आर्थिक सहयोग पर आधारित रही थी।
द्वितीय अध्याय ‘‘ठिकाना दस्तावेजों की प्रकृति’’ है। साधारणतः ठिकाना शब्द का अर्थ निवास करने व मुख्यालय से है लेकिन पुरानी ख्यातों, बातों, पट्टे-परवानों, बहियों और रोजनामचों में ठिकाना शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। महाराजा राजसिंह की पट्टा बही, जोधपुर हुकूमत की बही, मुदियाड़ रीख्यात, जोधपुर राज्य की ख्यात में जागीर के लिए गांव शब्द का प्रयोग किया गया है। अनन्तर महाराणा भीमसिंहकालीन जागीरदारों के गांव पट्टों की हकीकत में जागीर के मुख्य गांव के लिए कहीं-कहीं पर राधान शब्द मिलता है इसका अर्थ ठिकाने से न होकर मुख्यालय से है। नैणसी की ख्यात में ‘बसी’ शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ परिवार सहित बसने से है। उपर्युक्त् शब्द यद्यपि ठिकाने की परिभाषा में नहीं आते हैं लेकिन ठिकाने के उद्भव की ओर संकेत करता है। ठिकाने शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख 17वीं शताब्दी के अन्त में लिपिबद्ध उदयपुर के ऐतिहासिक ग्रंथ रावल राणाजी की बात में हुआ है। ठिकाने में जागीदार के अपने परिवार सहित बसने और सम्पूर्ण जागीर के गांवों का शासन-प्रबन्धन व संचालन उस ठिकाने से होने के फलस्वरूप वहां के गांवों का न केवल पूरा हिसाब-किताब का ब्यौरा रखा जाता था बल्कि ठिकाने के घरेलू खर्च में राशि किन-किन मदों में खर्च की जाती, उसका सम्पूर्ण लेखा-जोखा भी रखा जाता था।

खेजड़ला ठिकाना भाटी जागीरदारों का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। इस ठिकाने में ‘जमाबन्दी री बही’, ‘पैदा री जमा बही’, ‘पट्टा रा गांवां री आमदनी’

(4)

व ‘खरच री जमा बंदी’, ‘कोठार री बही’, ‘ठिकाणो खेजड़ला रो मास बारो जमा खरच रो’, ‘खरच री लागत छूट री वीगत’, ‘घासमारी री जुपी वगेरे रा जमी खरच’, ‘सावन-ऊनालू हासल वगेरे पैदास री जमा बंधी’, ‘जमा खरच रो सावो, गांव राजोला कला री माल सेरीणा, गांव छाकड़ा री घासमारी, गांव मादलियो रै जमा खरच रौ आद बहियों से ज्ञात होता है कि इस ठिकाने के अन्तर्गत कई गांव थे उनकी आय का हिसाब खेजड़ला ठिकाने में रखा जाता था।

मेवाड़ का केलवा ठिकाना, ठाकुर किशनदास को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की ओर से दिया गया, उक्त ठिकाना इनके वंशजों के पास वंश परम्परागत रहा। महासिंह को युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने पर मेवाड़ के महाराणा ने 1711 ई. में कानोड़ एवं आसपास के क्षेत्र को ठिकाने के रूप में दिया था। भाटी पृथ्वीसिंह को जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने स्थायी तौर पर लवेरा का ठिकाना दिया था।

राज्य की ओर से जागीरदारों को ठिकाना स्थायी तौर पर दिया जाता था इसलिए उसके वंशजों का पीढ़ी दर पीढ़ी अधिकार रहता था। गम्भीर अपराध होने पर ही ठिकाना जब्त किया जाता था। वैसे ठिकानेदार की मृत्यु के साथ ही ठिकाना खालसा हो जाता था। मेवाड़ में ठिकानेदारों की श्रेणियां तीन भागों में विभाजित थी जिन्हें सोलह, बत्तीस व गोल के सरदार कहा जाता था। प्रथम श्रेणी के ठिकानेदारों की संख्या 16 थी, द्वितीय श्रेणी के ठिकानेदारों की संख्या 32 व तृतीय श्रेणी के ठिकानेदारों की संख्या कई सौ थी। यह ज्ञात होता है कि लाग-बाग वसूल करने का अधिकार न केवल राज्यों को था बल्कि ठिकानेदार अपने क्षेत्र में लाग-बाग वसूल करने

(5)

के लिए स्वतंत्र थे। इन लाग-बागों की निरन्तर वृद्धि होती गई। इसके अतिरिक्त हासल, मुकाता आदि कई आय के स्रोत थे जिससे ठिकाने की शासन व्यवस्था का क्रम चलता रहता था। राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था की प्रक्रिया का अध्ययन ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस विषय की विशिष्टताओं को स्वयं इतिहासकारों ने स्वीकार किया है।
तृतीय अध्याय ‘‘व्यापार एवं वाणिज्य’’ है। मेवाड़ क्षेत्र में व्यापार एवं वाणिज्य का वह आधुनिक स्वरूप उपलब्ध नहीं था जो आज देखा जाता है। उद्योग-धन्धों का अभिप्राय उन कुटीर तथा हस्त-शिल्प उद्योगों से है जो तत्कालीन समय में समाज की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। मेवाड़ के जन-जीवन में ये उद्योग-धन्धे समाज की जातियों तथा वंशानुगत स्थितियों पर आधारित थे। ग्राम्य शिल्पी लोग कृषि एवं ग्राम्यजीवन की आवश्यकताओं के लिए उद्योग करते थे। इन शिल्पियों का आर्थिक जीवन कृषि पर आश्रित होता था। वस्तुतः ग्राम्य शिल्पी अर्द्ध कृषक और साधारण शिल्पी का जीवन व्यतीत करते थे। नगर के शिल्पी कुशल शिल्पी की श्रेणी में आते थे। रोजगार अ©र सम्पन्नता की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी क¢ पूर्वार्द्ध के मेवाड ़ में उद्योग-धन्धों की तीन श्रेणियाँ थीं - एक श्रेणी उन उद्या¢ग-धन्धों की थी जिनका उत्पादन स्थानीय आवश्यकताअ¨ ं की पूर्ति तक ही सीमित था जैसे कि सूतली-रस्सी, टाटपट्टी उद्या ेग, काष्ठ उद्योग, मिठाई उद्योग इत्यादि।

मेवाड के उद्योग प्रायः कुटीर ग्रामोद्योग की श्रेणी में रहे थे। अतः आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप इन उद्योगों का विस्तार राज्य की मांग तथा पूर्ति तक सीमित रहा था। यद्यपि 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में देश के पूर्वी भाग में तथा

(6)

मध्यवर्ती भाग में रेल लाइन बन जाने के फलस्वरूप भीलवाड़ा एवं उदयपुर के कांसे के बर्तन, रूई, हथियार, पशुओं की खाल, कास्ट, खिलौने छपाई व कपडे आदि का निर्यात प्रारम्भ होने लगा था। परन्तु इस निर्यात की मात्रा कम होने की वजह से स्थानीय उद्योग के विकास तथा उन्नति प्रभाव नहीं पड़ा था। बस्तियों में जिस प्रकार शिल्प समूह थे उसी प्रकार वणिक समूह भिन्न-भिनन मुहल्ला में अवस्थित रहते थे। वणिकों के व्यवसाय की दृष्टि से निम्न वर्ग किये जा सकते हैं- 1. ग्राम्य वणिक, 2. नगर वणिक तथा बोहरा या साहूकार। किसान शिल्पी तथा अन्य सेवक वर्ग से इन बोहरों का आर्थिक सम्बन्ध वस्तु अथवा नकद के पारस्परिक विनिमय पर आधारित होता था। इस प्रकार बोहरा व्यापारी ग्रामीण प्रजा के लिए बैंक तथा मंडी माल के मुख्य संग्रहकर्त्ता एवं वितरक थे। मेवाड़ की राजस्व हानि का प्रमाणकरण इससे किया जा सकता है कि उसे 48 प्रतिशत चुंगी आय में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा स्थापित अमल की कोठी और तुलाई कांटे की व्यवस्था का भार भी वहन करना पड़ता था। नमक के समझौते के फलतः राज्य में नमक बनाने वाले तो बिल्कुल बेकार हो गये थे। नमक लाने-लेजाने वाला बनजारा लोगों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन नष्ट हो गया तथा उन्हें जीविका के अन्य साधन ढूंढना पडे। एक गांव से दूसरे गांव माल लाने-ले जाने पर ग्राम पंचायतों द्वारा मापा जाता था। यद्यपि दाण और बिस्वा का अधिकार राणा को ही था किन्तु 18वीं शताब्दी के कालातिक्रमण के फलतः विशिष्ट योग्यता प्रदर्शित करने वालो को क्षत्रिय दाण के अधिकार प्रदान किये गये थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से लगातार आयात शुल्क बए़ते-बढ़ते 20वीं शताब्दी मंे तिगुणे हो गये थे। इसका मुख्य कारण 1881-82 ई. में

(7)

नमक व्यापार संकट के समय से राज्य द्वारा अफीम, तम्बाकु, महुआ, गांजा, कपड़ा, रेशम, खांड, कपास, लकडी तथा लोहे के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर चुंगी समाप्त करना था। पुण्यार्थ धर्मार्थ लडकी के विवाह तथा मृत्युभोज में प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं पर शुल्क माफ रहती थी।

अतः स्पष्ट होता है कि राज्य में उद्योग, वाणिज्य तथा व्यापार की स्थिति मराठा अतिक्रमण काल में सुरक्षा अभाव के फलस्वरूप पल्लवित नहीं रहा वहां 19वीं शताब्दी में सड़क यातायात की सुव्यवस्था के अभाव में विदेशी व्यापारी राज्य की ओर अधिक आकर्षित नहीं हुए थे। यद्यपि कर्नल टॉड ने बाहर से व्यापारियों को निमंत्रित कर राज्य में बसने तथा उन्हें चुंगी में रियायत दिलाने का प्रयत्न किया था किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश भारत की सरकार द्वारा अधिक आर्थिक लाभ अर्जित करने की प्रवत्ति के परिणामतः मेवाड़ राज्य भी आर्थिक उत्पादन बढ़ाने और व्यापार को प्रश्रय देने के प्रति उदासीन रहा था।
चतुर्थ अध्याय ‘‘कृषि व भू-राजस्व व्यवस्था’’ है। मेवाड़ राज्य के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार कृषि थी। अतः इस दृष्टि से भूमि का बड़ा महत्त्व था। राज्य की समस्त भूमि पर राजा का अधिकार होता था। इसीलिये उसे भूपाल, पृथ्वीनाथ एवं भूपति अदि उपाधियों से विभूषित किया जाता था। परन्तु व्यावहारिक रूप में भूमि पर काश्त करने वाले, जब तक लगान देते रहते थे, तब तक वे इसके मालिक बने रहते थे। भूमि कर निर्धारित करते समय काश्तकार का स्तर, भूमि की किस्म, सिंचाई की सुविधा, गाँव से खेत की दूरी, फसलों की किस्म, काश्तकार का वर्ग एवं जाति आदि पहलूओं का ध्यान रखा जाता था।

(8)

भू-राजस्व के अलावा अन्य करों का भार हालांकि अधिक नहीं होता था, लेकिन भू-राजस्व के साथ-साथ किसानों को अन्य कई कर भी चुकाने पड़ते थे। विभिन्न दस्तावेजों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किसान को कर भार के रूप में फसलों के उत्पादन का आधा भाग राज्य को अदा करना पड़ता था तथा प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से अपने कुल उत्पादन का 10वाँ हिस्सा अन्य करों के रूप में भुगतान करना पड़ता था।राज्य का हिस्सा वास्तविक भू-राजस्व के रूप में ‘माल’ होता था तथा ‘जिहात’ में अन्य उपकर, सिवाई जमाबंदी में कृषि करों के साथ-साथ अन्य करों का भी उल्लेख होता था।
डॉ. मांगीलाल व्यास ‘मयंक’ के अनुसार, ‘‘राजा द्वारा पदत्त भूमि को पाँच भागों में विभाजित किया गया है - खालसा भूमि, जागीर की भूमि, भूम, शासन अथवा मुआफी की भूमि तथा चराणोत या गोचर भूमि। खालसा भूमि उस भूमि को कहा जाता था, जिस पर सीधा राजा का ही अधिकार रहा करता था। यह भूमि ग्रामिण किसानों में वितरित कर दी जाती थी। इस भूमि पर कृषि करने वालों को एक निश्चित कर देना होता था, जिसे ‘लाग’ अथवा ‘हासिल’ कहा जाता था।
डॉ. गोपीनाथ शर्मा के शब्दों, ‘‘सिंचाई की सुविधा वाली जमीन, ‘‘पीवल’’, पानी में भरी हुइ ‘गलत हांस’, जोती जान ेवाली ‘हकत बकत’, काली-उपजाऊ जमीन ‘माल’, पहाड़ी जमीन ‘मगरों’, कंकर वाली जमीन कांकड़ आदि। इन सभी पकार की भूमि को ‘क्यारी’ और बटका या कटका में बांटा जाता था, और उन्हें कुएं, नदी, तालाब, नहर आदि से सींचा जाता था। रहट या चरस या चमड़े की टोकरियों से सिंचाई की जाती थी। कहीं-कहीं नदी से ऊपर गढ्ढे में पानी भरकर सिंचाई होती थी

(9)

और कहीं तालाबों से नहर ले जाकर भूमि को सींचा जाता था। बाबर ने भी भारतीय सिंचाई व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।’’
डॉ.एम.एल. व्यास ‘मयंक’ ने कृषि पद्धति के संबंध में लिखा है कि, ‘‘आज से कुछ वर्ष पूर्व तक खेती के जो तरीके पचलित थे, वे ही विगत कई शताब्दियों से चले आ रहे थे।’’ कृषि काय हेतु हल एवं बैल का प्रयोग होता था। पहला हल जमीन को पोली करने के लिए एवं दूसरा हल बीज डालने के लिए चलाया जाता था। जहां पर कठोर भूमि होती थी, वहां पर हल का प्रयोग अधिक बार करना पड़ता था। कुम्हार, तेली, नाई जैसी सेवक जातियों तथा लुहार, सुथार आदि शिल्पी जातियों तथा पटेल, बलाई, पटवारी अथवा अन्य राज्य कर्मचारियों की निजी बपौती कृषि भूमि पर उपज का 1/4 भाग लिया जाता था। मुगल प्रभाव से प्रभावित इजारेदारी प्रणाली मेवाड़ में मुकाता प्रथा के रूप में विद्यमान रही थी। भू-राजस्व वसूली के लिये भूमि ठेके पर देने का सर्वाधिक प्रचलन मराठा अतिक्रमण काल (1751 ई. से 1818 ई.) में व्याप्त था। मराठा द्वारा राणा जागीरदार तथा प्रजा से नजराना खर्च तथा समय-समय पर लिया जाता था। किनतु कई बार यह राशि शेष रहने अथवा समयानुसार अदायगी नहीं होने के कारण मेवाड़ पर ऋण का भार बढ़ता जा रहा था। ऐसे ऋणों की पूर्ति हेतु राणा अथवा जागीरदार की खालसा और जागीर भूमि मराठा नायकों किे गिरवी रखी गई थी। इन गिरवी रखी गई खालसा कृषि भूमि अथवा जागीर कृषि भूमि को मराठा नायक ऋण वसूली के लिये ठेके पर उठा देते अथवा स्वयं इजारे पर ले लिया करते थे। मराठों द्वारा इस प्रकार भू स्वामित्व को गिरवी रखने का परिणाम होता था कि वे भूमि क्षेत्र राजस्व का उपभोग

(10)

करने लग जाते थे। इस प्रकार ग्रहित जमीन के सम्पूर्ण स्वत्व के उपभोग का अधिकारी मुक्तेदार बन जाता था। वह अपने ऋण तथा उसके ब्याज का लाभांश प्राप्त करना भूमि से प्रजा से मनमाना राजस्व वसूल करने लग जाता था। मेवाड़ में अध्ययनकालीन लिये जाने वाले राड नामक सभी शुल्क या कराधान मराठा राजस्व व्यवस्था के परिणाम थे।
19वीं शताब्दी में बन्दोबस्त के दौरान अंग्रेज अपनी मांगों में अकाल के दौरान भी किसी प्रकार की छूट नहीं देते थे। ब्रिटिश अधीनस्थ विवश राजा भी जनता को करों में छूट नहीं प्रदान करता था। अब लगान माफ करने की बजाय एक-दो साल के लिए स्थगित किया जाता था। किसानों ने जयपुर महाराजा से खिराज में कमी का अनुरोध किया लेकिन उनका अनुरोध अस्वीकार कर दिया गया। अतःयह कहा जा सकता है कि भू-राजस्व व्यवस्था से ही ग्रामीण किसान का कई तरीकों से राज्य जागीरदारों एवं राज्याधिकारियों द्वारा शोषण किया जाता था। शासन के अधीन कुछ नई व्यवस्थाएं लागू की गई लेकिन ग्रामीण जनता का शोषण जारी रहा।
पंचम् अध्याय ‘‘महाराणा मेवाड़ एवं सामंत’’ है। मेवाड़ की सामाजिक व्यवस्था में सामंत पद्धति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामंत व्यवस्था एक प्रकार की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का एक रूप थी, जिसमें राजा के समान एक नेता होता था और उसके साथ उसके अपने कुल के वंशज या अन्य राजपूत कुल के वंशज उसके साथी और सहयोगी के रूप में रहते थे। राजपूत राज्यों की स्थापना के साथ ही सामंत प्रथा का उद्भव हुआ। राजपूत शासकों के राज्य विस्तार के साथ-साथ सामंत प्रथा भी विकसित होती चली गयी। मध्य युग में राजा अपने परिवार के ही किसी योग्य व्यक्ति को सामंत के पद पर नियुक्त करता था। इस

(11)

समय राजा की स्थिति सामंतों में ‘बराबर वालों में प्रथम’ के समान थी। राजा के निर्वाचन में भी सामंतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। मेवाड़ मुगल के विरोध की भावना की कहानी यहां के राजा और प्रजा के वीरोचित, नैतिक और धार्मिक पवित्रता के कार्यों की उज्ज्वलता का एक महिमामय गौरव की गाथा का वर्णन है। इनके शौर्य और चरित्र के प्रति जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसकी गरिमा और बढ़ जाती है जबकि साधनों से पंगु और सीमा की दृष्टि से अत्यन्त लघु राज्य एक अति समृद्ध शक्ति के विरूद्ध युद्ध लड़ता रहा तथा मुगलों को लोहे के चने चबाने पड़े। जंगलों, वीहड़ों व पहाड़ों से घिरे होने के कारण मुगलों को रास्ते नहीं मिल पाते थे। वे भटक जाते थे, और वे आर्थिक रूप से व भूख से भी पीड़ित रहते थे क्योंकि मेवाड़ में युद्ध लम्बे समय तक चलते रहते थे, इस कारण से वे अधिकांश युद्धों में उनहें सफलता नहीं मिल पाती थी। इसी क्रम में मेवाउ़ के शासकों का और मुगलों के साथ उनके संबंध की चर्चा इस शोध प्रबन्ध में की गयी है।
नासिरशाह नामक योद्धा ने हासी के युद्ध में शत्रु को देखते ही उनक पत्नियां को अपनी दासी बना लिया था। हम्मीर अजेसी के समीप आया, अजेसी ने विजयी हम्मीर को राज्य दे दिया। राणा समरसिंह द्वारा पृथ्वीराज चौहान तृतीय गजनी के स्वामी शाहाबुद्दीन गोरी के विरूद्ध लउ़ रहा था। उस समय उसकी सैनिक सहायता में 12 हजार योद्धाओं ने साथ दिया था। इसका उल्लेख ‘रासा’ नामक पुस्तक में इस युद्ध का विस्तृत वर्णन है। हाड़ौती नरेशों को जीतकर उसकी भूमि ले ली। सादल से दिल्ली के ‘भोलूमल्लिक’ का अपहरण कर लिया। कुंभा ने तुर्क सेना को परास्त किया तथा

(12)

बारंबार ब्राह्मणों को धन और भूमि का दान दिया। पृथ्वीराज ने दिल्लपति सिकन्दर के प्रिय टोडा के शासक ‘लल्लूखां’ को मारकर वहां का शसन सोलंकी नरेश को दे दिया। तीन बार आबू नरेश को जीता, गिरनार को ध्वस्त किया। पराक्रम करते हुये पृथ्वीराज की मृत्यु हो गई। संग्राम सिंह दो लाख सैनिकों के साथ लेकर वह दिल्ली के स्वामी बाबर के देश में फतेहपुर तक पहुंचा संग्रामसिंह ने बाबर से अनेक बार युद्ध किया तथा कई यवनों को मार दिया। जयमल व पत्ता ने दिल्ली के शासक अकबर से युद्ध किया था जिसमें वे मारे गये थे। इस घटना के पश्चात उदयसिंह ने अकबर के सैनिकों को चित्तौड़ दुर्ग के आसपास लगभग 7 वर्षों तक परेशान किया था। बिहार, गौड़, बल्लोच, मालवा एवं मध्यप्रदेश का शासक दिल्लीपति शेरशाह उसका सबसे बड़ा शत्रु का उदयसिंह पहले नम्र हो गया और फिर उसने दिल्लीपति की सेना का विनाश कर दिया। शेरशाह के पुत्र सलेमशाह के साथ राजा उदयसिंह ने युद्ध किया।

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजस्थान के सामंत अपनी खोई हुई गरिमा को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। मराठों की लूट-खसोट के कारण राजस्थान के शासक उनके समांतों के सहयोग पर आश्रित हो गये थे। सामंत अपनी जागीरों में स्वतंत्र शासक की भांति शासन कर रहे थे। वे शासक की भांति अपने दरबार लगाते थे तथा अपनी जागीर के प्रशासन के लिए स्वयं कायदे-कानून बनाते थे, उन्हें न्यायिक अधिकार प्राप्त होने के कारण अपनी जागीर के झगड़ों पर फैसला भी वे स्वयं ही करते थे। जागीरों में होने वाले उपद्रव भी सामंत ही दबाते थे। मृत्युदण्ड के अतिरिक्त वे अपनी जागीर के अपराधियों

(13)

को सभी प्रकार दंड दे सकते थे। वअ पनी जागीर में रहने वाले व्यापारियों से विभिन्न प्रकार के कर वसूल करते थे। शोध प्रबन्ध का षष्ठम् अध्याय ‘‘उपसंहार’’ है। मेवाड़ प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। भारतीय इतिहास में मेवाड़ का अपना विशिष्ट स्थान है। पारम्परिक राजपूत शौर्य एवं वीरता के अतिरिक्त जो तथ्य इसके इतिहास को महत्वपूर्ण बनाता है वह है राज्य द्वारा दिया गया नागरिकों का विशिष्ट सम्मान। मेवाड़ के रीति-रिवाजों की सबसे बड़ी विशेषता उनका सादा और सरल होना है। मेवाड़ के रीति-रिवाजों पर वैदिक सभ्यता का प्रभाव दिखाई देता है। जन्म से संबंधित रीति-रिवाज 1. गर्भाधान 2. आठवां पूजन 3. जलवा या कुआं पूजन 4. नामकरण 5. जडूला 6. गोद लेना विवाह से संबंधित रीति-रिवाज 1. सगाई 2. टीका 3.लग्न पत्रिका 4. निकासी या बिन्दोरी 5. बारात।
जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो परलोक में उसकी आत्मा की शांति के लिए कई रस्में की जाती हैं, जिन्हें शोक या दुःख की रस्मों के नाम से जाना जाता है। अपने मृत पति के साथ चिता में जलकर मरना सती कहलाता था। सती का शाब्दिक अर्थ ‘अमर’ अथवा ‘सत्य पर स्थिर रहने वाली’ है, जो पति-पत्नी का अटूट और अविच्छेद सम्बन्ध भी व्यक्त करता है। बहुपत्नीत्व प्रथा प्राचीन काल से ही राजपरिवारों, धनी वैश्यों या उच्च वर्णों में विशेषतः प्रचलित थी।
मेवाड़ राज्य में पर्दे की प्रथा नाममात्र की थी। मुगल प्रभाव के कारण प्रचलित हुई पर्दा प्रथा का राज्य में कोई प्रभाव नहीं था। राज्याभिषेकोत्सव के अवसर पर महाराणा अपनी पटरानी सहित राज्यासन पर बैठता था।

(14)

नाता प्रथा परस्पर सहमति के आधार पर पुर्नविवाह की प्रथा है। इस प्रथा के अन्तर्गत महिला अपने पति को छोड़कर पति के ही किसी भाई या अन्य किसी पुरूष के साथ रहने लग जाती है। किसी भी समाज में स्त्रियों की दशा को उस समाज की उन्नति या अवनति का मापदण्ड माना जा सकता है। मेवाड़ में स्त्रियों की दशा की एवं झलक इस प्रकार थी। हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक था।

मेवाड़ में मेंलों की सुदीर्घ परम्परा है।यहां
पर प्रान्तों में शिकार, देवी पूजा या विजय के किसी मौके पर सामूहिक उत्सव होते थे। मेवाड़ में ‘पांचरात्र धर्म’ का प्रसार था, जिसमें मेलों और उत्सवों का बड़ा महत्व दिया गया है। मेवाड़ में 9वीं-10वीं सदी तक आहाड़, नगरी और अंवलेश्वर में ऐसे उत्सव होते थे। मेवाड ़ क्ष ेत्र में राजनैतिक चेतना उत्पन्न नहीं हा ेने क¢ विश ¢ष कई कारण थ े। सबसे बड़ी बाधा ता े यहाँ की राजनैतिक व्यवस्था थी। यहाँ पूर्णत निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी राजतन्त्र विद्यमान था जिसक¢ जनता क¢ प्रति उत्तरदायी होने की कल्पना ी नहीं की जा सकती थी। राजतन्त्र वंशानुगत था अ©र राजपद क¢ दैवी स्वरूप की मान्यता स¢ प्रऽावित था। इससे ऽी बुरी स्थिति जागीरदारी व्यवस्था का व्यापक प्रचलन था। हर रियासत की काफी ऽूमि जागीरदारों क¢ अधिकार में थी अ©र वहाँ की जनता जागीरदारों क¢ अमानवीय अत्याचार एवं शोषण का शिकार थी। लगान एवं लाग-बाग क¢ साथ-साथ जनता से बेगार ऽी ली जाती थी अ©र इस अन्याय क¢ विरुद्ध का ेई सुनवाई नहीं थी।
मेवाड ़ क्ष ेत्र में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत करन¢ में श्री माणिक्यलाल वर्मा द्वारा स्थापित सेवा मंदिर एवं ख ंडलाई आश्रम का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। रचनात्मक कार्य करने क¢ लिए ‘मेवाड़ सेवा मन्दिर’ नामक संस्था की स्थापना कर श्री माणिक्यलाल वर्मा ने हरिजना ें एव ं आदिवासी ऽीला ें में शिक्षा का प्रसार करने का निश्चय किया। उन्होंन े

(15)

हरिजना ें एवं ऽीलों क¢ सर्वता ेमुखी उत्थान क¢ लिए खांडलाई आश्रम की स्थापना की।
निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मेवाड़ का सांस्कृतिक वैभव बेजोड़ है। यह प्रदेश सांस्कृतिक संपदा की दृष्टि से इतना समृद्ध एवं सम्पन्न है कि वह विश्व समाज को कुछ दे सकता है। जो देय सामग्री है, वह सभ्यता की अविच्छिन्नता, ओजस्विता, त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गौरमयी संस्कृति है। इस प्रदेश की समृद्ध संस्कृति एवं सांस्कृतिक वैभव ने यहाँ के मानव में उदारता, दृढ़ता, एकता, समन्वय, भाईचारा एवं शौर्य की भावना का संचार किया। प्राचीन काल में जितनी भी विदेशी जातियाँ आई, उन्हें यहाँ की धरती ने अपने मंे आत्मसात् कर लिया। इसके साथ ही मध्यकालीन आक्रमकों की विशेषता को सामंजस्य की भावना से इस प्रकार प्रभावित किया कि यहाँ एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ।

àææðŠæ çÙÎðüàæ·¤

न्द्रिंò0 त्त्Úड्ढन्९ट्ठý ऽन्न¤×द्रÚन्
àæ×æü

ÃØæ•ØæÌæ
Õद्रÕट्ट ह्नद्रद्रðझ्द्रÚन्द्र×
Úन्द्रप्रऽ¤ध्क्र ऽ¤श्द्र
×ह्मन्द्रप्र”सद्रश्क्रए
ञश्”Úन् ;Úन्द्रप्रैट्टद्रत्त्द्ध

àæç×üÜæ